एम0पी0ए0एम0–101

संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र

इकाई 1 – रस सिद्धान्त, लय व छन्द

- संगीत में रस
- संगीत में लय
- संगीत में छन्द

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि :–

- संगीत में रस से क्या अभिप्राय है और इसका क्या महत्व है?
- संगीत में लय से क्या तात्पर्य है और उसकी अनिवार्यता क्यों है?
- संगीत में छन्द का क्या महत्व है?
- संगीत में रस, छन्द व लय के महत्वपूर्ण समावेश से क्या विशेषता उत्पन्न होती है?

संगीत में रस

भारतीय वाङ.मय में 'रस' का चार अर्थों में प्रयोग किया गया है, जो निम्न हैं :–

- सामान्य अर्थ में आस्वाद से संबंधित, जैसे पदार्थ का 'रस'।
- आयुर्वेद तथा उपनिषदों में प्रस्तुत अर्थ।
- साहित्य, नाट्य आदि का 'रस'।
- भक्ति तथा मोक्ष का 'रस'।

- पदार्थ के रस के अर्थ में प्रयुक्त होने से तात्पर्य यह है कि किसी भी पदार्थ, वनस्पति आदि को निचोड़ कर उससे निकाला हुआ तत्व। यह तत्व 'रस' कहलाता है, जैसे–सन्तरें का 'रस' और इसका आस्वादन भी रस ही है।
- 'सामवेद' तथा 'अथर्वेद' में इसका प्रयोग गौ–दुग्ध, मधु, सोम आदि के लिए हुआ है।
- आयुर्वेद में इसका अर्थ शरीर की आन्तरिक ग्रन्थियों के रस से है जिस पर हमारा जीवन निर्भर है।
- उपनिषदों में इसे परम आनन्द के लिए प्रयोग किया गया है तथा महाकाव्यों की समालोचना के सन्दर्भ में इसे 'ब्रहमानन्द सहोदर' कहकर व्याख्यावित किया गया है।
- 'कामसूत्र' नामक ग्रन्थ में इसे रीति प्रेम आदि के लिए प्रयुक्त किया गया है।

इससे यह पता चलता है कि भारतीय साहित्य में रस के सन्दर्भ में गहनता से विचार हुआ है।

- वैसे भारतीय मनीषियों ने 'रस', सौन्दर्य एवं आनन्द को लगभग पर्याय माना है। रस को 'अखण्ड स्वप्रकाशानन्द', 'चिन्मय', 'ब्रहमानन्द–सहोदर' की संज्ञा दी गई है।
- भरत के समय तक 'रस' का अर्थ बहुत विकसित हो चुका था। इसका प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि भरत ने अपने ग्रन्थ में कुछ पूर्ववर्ती आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। पूर्ववर्ती आचार्यों के लिखे हुए ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं। फलस्वरूप नाट्यशास्त्र ही सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है जिसमें रस की विवेचना की गई है।

''रसो वैसः। रसो वेसः रसह्नेवायं लब्ध्वाऽनंदी भवति।''

अर्थात्—वह रस रूप है। इसीलिए रस पाकर, जहाँ की 'रस' मिलता है, उसे प्राप्त कर मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है।

भारतीय संस्कृति में सौन्दर्य का लक्ष्य बिन्दु सुन्दरता न होकर 'रस' है। 'रस' आनन्द का सीधा स्रोत है तथा सभी कलाओं में व्यापत होने के कारण इसे ही लक्ष्य माना जाता है।

'रस' के महत्त्व को दर्शाते हुए भरतमुनि कहते हैं:–

''नहि रसाद्वेत कश्रिदप्यर्थः प्रवर्तते''

अर्थात 'रस' के बिना कोई बात प्रारम्भ नहीं होती।

'रस' के विषय में भरत मुनि खुद प्रश्न करते हैं–'रस' इति का पदार्थ अर्थात रस क्या पदार्थ है? इसके उत्तर में भरतमुनि कहते हैं –'आस्वद्यात्वात्' अर्थात 'रस' आस्वाद्य पदार्थ है। अर्थात् यदि संगीत द्वारा प्राप्त अनुभूति की बात करें तो इसका सम्बन्ध भाव तथा आनन्द से है और आनन्द रस का मूर्त रूप है।

रस निष्पत्ति

रस निष्पत्ति के बारे में भरत कहते हैं –

''**विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पतिः**''

अर्थात विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि भावों के संयोग से ही 'रस' निष्पत्ति होती है।

भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में चार पक्षों पर मुख्यतः विचार किया है :–

1. अभिनय **2. नृत्य** **3. संगीत** **4. रस**

इसमें प्रथम तीन साधन मात्र हैं, जिनके माध्यम से चौथे की अनुभूति होती है, जिसे रसानुभूति कहा गया है।

रस निष्पति तथा संयोग को लेकर विद्वानों एवं आचार्यों में मतभेद हुआ जिसके फलस्वरूप चार दृष्टिकोण हुए :–

1. भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद

2. आचार्य शंकुक का अनुकृतिवाद

3. भट्टनायक का भुक्तिवाद

4. अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

रस के अवयव – रस सिद्धांत के प्रवर्तक 'भरत' ने भावनाओं से संबंधित रस के अवयवों यथा स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचाारी(संचारी) भावों की चर्चा की है।

- **भाव** – भरत मुनि की सुप्रसिद्ध उक्ति है –''भावगति इतिभाव'' अर्थात भाव वही है, जिसकी भावना हो। अतः रसानुभूति के अन्तर्गत भावों के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाता है।

  ''विभावेनारूतों योऽर्थो हानुभावेस्तु गम्यते।

  वागडसतवाभिनर्यः सं भाव इति संज्ञित''।।

  अर्थात–भाव वह अर्थ है जो विभावों द्वारा निष्पन्न होता है और वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक भावों के अभिनय से युक्त होता है।

मूलतः भावों को दो प्रकार का माना गया है :–

- स्थायी या देर तक ठहरने वाला।
- 'संचारी' या जो पल भर में भड़क उठता है और पल भर में ठंडा पड जाता है। इसे व्यभिचारी भाव भी कहते हैं।

रस का आस्वाद भाव के माध्यम से प्रेषक के हृदय में होता है। रस तथा भाव में परस्पर आत्मा तथा परमात्मा का सम्बन्ध है।

स्थायी भाव – किसी अन्य भाव से न दबने वाला, उल्टा सभी को समेट अपने में आत्मसात करने वाला, काल तक ठहरने वाला 'स्थायी भाव'

इसकी महत्ता को बताते हुए भरत मुनि कहते हैं कि जैसे मनुष्यों में राजा और ऋषियों में गुरू की प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार सभी भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ तथा प्रतिष्ठित होते हैं।कहा जाता है।

स्थायी भावों और रसों का पारस्परिक संबंध इस प्रकार है:–

स्थायी भाव	**रस**
रति	श्रृंगार
हास	हास्य
शोक	करूण
क्रोध	रौद्र
उत्साह	वीर
भय	भयानक
जुगुप्सा	वीभत्स
विस्मय	अद्‌भुत

विभाव – भरत विभाव की व्याख्या इस प्रकार करते हैं :–

''बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वांगगाभिनयाश्रयाः।

अनेन अस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः''।।

अर्थात –जो वाणी, अंग तथा अभिनय के द्वारा अनेक अर्थों का बोध कराते हैं, वे विभाव कहलाते हैं।

विभाव के दो रूप होते हैं :–

- आलम्बन
- उद्दीपन

- <u>अनुभाव</u> – विभाव के दोनों पक्ष आलम्बन और उद्दीपन मिलकर जिसके हृदय में भाव उद्वेलित करते हैं, उसे आश्रय कहा जाता है। आश्रय के हृदय में भावों का संचार होने पर उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में कुछ विशिष्ट लक्षण नजर आते हैं, इन विशिष्ट लक्षणों को अनुभाव कहते हैं। जैसे क्रोध आने पर त्योरियो का चढ़ जाना, शोक से चेहरे पर उदासी छा जाना, करूण भाव से विहवल होने पर आँसू आना आदि।
- अनुभाव मानसिक दशा को प्रकट करते हैं। भरत ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है – जिस आंगिक, वाचिक एवं सात्त्विक अभिनयों द्वारा दर्शक को रस विशेष की अनुभूति का बोध होता है, अनुभाव कहलाता है।

भारतीय साहित्य में काव्यशात्रानुसार नौ रस माने गए हैं। इसी प्रकार भारतीय संगीत शास्त्रज्ञों ने भी नव रसों का विस्तृत वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं:

1. श्रृंगार रस	2. वीर रस	3. करूण रस
4. शांत रस	5. रौद्र रस	6. भयानक रस
7. वीभत्स रस	8. अद्भुत रस	9. हास्य रस

एक दसवां रस भक्ति रस के नाम से जाना जाता है। इन सभी रसों का उल्लेख हमारे काव्यों में मिलता है। संगीत में काव्य होने के नाते उन सभी रसों का समावेश हो सकता है।

भरत ने स्वरों में रस का विभाजन इस प्रकार किया है –

म – हास्य रस

प – श्रृंगार रस

स – वीर रस

रे – रौद्र रस

शारंगदेव ने रसों को विभिन्न स्वरों से निम्न प्रकार जोड़ा है :–

स–रे – वीर रस

ग–नि – करूण रस

प–म – हास्य रस

ध – वीभत्स रस

संगीत के तीन अंग हैं – गायन, वादन व नृत्य।

- गायन तथा वादन में नाद के द्वारा रस की निष्पत्ति होती हैं। यद्यपि गायन में शब्दों का ही आश्रय लिया जाता है तथा वादन में केवल स्वरों का आश्रय लिया जाता है।
- नृत्य में ताल व भावों के माध्यम से रस की निष्पत्ति होती है। नृत्य में रसानुभूति अधिक सुलभ है। चूंकि नृत्य नाटक के अधिक निकट है अतः इसके द्वारा रसनिष्पत्ति अधिक सहज होती है। इसके अतिरिक्त नृत्य से ही साहित्य में वर्णित नवरसों की प्राप्ति भी हो जाती है।
- किन्तु गायक तथा वादक के द्वारा श्रृंगार, करूण, शांत एवं वीर आदि रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की निष्पत्ति नहीं होती है। हाँ जब संगीत का प्रयोग नाटक में, नृत्य में या फिल्म आदि में पार्श्व संगीत की दृष्टि से किया जा रहा हो तो इसके द्वारा सभी रसों की निष्पत्ति सम्भव है। शास्त्रीय संगीत में जब यथा समय राग के माध्यम से श्रोता को आनन्द की अनुभूति होती हैं वही रसावस्था है।

संगीत में लय

- भारतीय संगीत के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'श्रुति' इसकी जननी तथा 'लय' जनक हैं।
- लय का स्पष्ट शाब्दिक अर्थ है संयोग, एकरूपता, मिलन।
- पारिभाषिक अर्थ में लय को ताल एवं काल माप का आधार माना जाता है।
- संगीत में स्वर और गीत की प्रस्तुति लय के आधार पर ही की जाती है।
- आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा है –'*कलायां एवं च लयं बिना न स्वरूप लाभः*' अर्थात् लय के बिना क्रिया के स्वरूप का लाभ नहीं हो सकता। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य में कोई न कोई लय अवश्य होती है।

लय की परिभाषाएं

- समय की समान गति को लय कहते हैं।
- संगीत में प्रयोग की जाने वाली गति को *'लय'* कहते हैं।
- ताल में एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच की विश्रांति का काल, जो पहली क्रिया का विस्तार है, *'लय'* कहलाता है।
- संगीत रत्नाकर के अनुसार –**'क्रियानान्तर विश्रांति लयः'** अर्थात क्रिया के अन्त में विश्रांति को लय कहते हैं।
- अमरकोश के अनुसार –**'क्रिया विश्रांति लयः'** अर्थात दो क्रियाओं के बीच के अन्तराल को लय कहते हैं।

यूं तो लय के अनगिनत प्रकार हैं, परन्तु लय को प्रधानतः तीन भागों में बांटा गया है :–

- **विलम्बित लय** – जिस लय की चाल बहुत धीमी होती है तो उसे विलम्बित लय कहते हैं। जैसे – गायन विधा में बड़ा ख्याल, ध्रुपद, धमार तथा तंत्र वाद्य में मसीतखानी गत विलम्बित लय में होती है।
- **मध्य लय** – जो लय न ज्यादा धीमी और न ही द्रुत हो, अर्थात साधारण लय को 'मध्य लय' कहते हैं। जैसे – गायन विधा में छोटा ख्याल, भजन, ठुमरी तथा तंत्रवाद्य में रज़ाखानी गत और अधिकतर नृत्य में मध्य लय रहती है।
- **द्रुत लय** – जिसकी गति बहुत तेज हो अर्थात द्रुत हो उसे द्रुत लय कहते हैं। यह लय मध्यलय से दुगुनी तथा विलम्बित लय से चौगुनी होती है। जैसे–गायन विधा में तराना, तंत्रवाद्यों में झाला तथा नृत्य में ततकार द्रुत लय में होती हैं।
- *इन लयों के बीच कोई निश्चित रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती, इन्हे सापेक्षिक माना जाना चाहिए।*

कहने का अभिप्राय यह है कि जब लय को नापा जाता है तो कला एवं मात्रा से नापा जाता है और उस कला एवं मात्रा में जितना समय लगता है उसी के अनुसार लय निर्धारित होती है। जैसे कोई रचना आठ मात्रा की है तो जितना समय आठ मात्रा में रचना के गाने में लग रहा है वह मध्य लय मान लें और उसी आठ मात्रा की रचना को यदि 16 मात्रा के समय काल में यानि धीमी लय करके दुगुने समय में गाया जाएगा तो वह विलम्बित लय कहलाएगी। यदि इसी आठ मात्रा के गीत को आधे यानि 4 मात्रा काल गाया जाएगा तो गति तेज हो जाएगी, तो यह द्रुत लय कहलाएगी।

लयकारी – लयकारी का आधार लय है। लय के विभिन्न दर्जे दिखाने या करने की प्रक्रिया लयकारी कहलाती है। जब कोई संगीतकार (गायक, वादक व नर्तक) एक मात्रा में 1, 2, 3 आदि मात्रा बोलता या बजाता है, तो इस क्रिया को लयकारी कहते हैं।

विद्वानों द्वारा लयकारी के दो प्रकार माने जाते हैं।

1. सीधी लयकारी – इसके अन्तर्गत दुगुन, तिगुन, चौगुन आदि लयकारीयां आती हैं।

2. आडी लयकारी – इसके अन्तर्गत आड, कुआड, बिआड आदि लयकारीयां आती हैं।

लयकारीयों के नामकरण का आधार है कि एक मात्रा में कितनी मात्रा बोली, गाई या बजाई जा रही हैं। जैसे सीधी लयकारी में 1 मात्रा में 2 मात्रा दुगुन, 1 मात्रा में 3 मात्रा तिगुन, 1 मात्रा में 4 मात्रा चौगुन आदि। इसी प्रकार आड लयकारी में 1 मात्रा में 1 मात्रा आड, 1 मात्रा में 1 मात्रा कुआड, 1 मात्रा में 1 मात्रा बिआड कहलाती है।

संगीत में छन्द

- लय का महत्व उसकी माप के अन्तर्गत गति में परिवर्तन, जोकि आकर्षक हो तथा श्रोता या दर्शक का मनोरंजन करे, छन्द कही जाती है। संगीत में छन्दों के प्रयोग से रसवृद्धि होती।
- छन्द में प्रभाव व आकर्षण की क्षमता, सुन्दरभाव समाहित रहती है जो सौन्दर्य वृद्धि हेतु आवश्यक होती है।
- प्राचीनतम गायन से लेकर आधुनिक गायन तक छन्द, सौन्दर्य के लिए आवश्यक है। पद अथवा बंदिश के लिए भी छन्द अनिवार्य है।
- छन्द का मूल लक्षण है—लय में बंधा होना। इसी कारण सामवेद में ऋचाओं को गेय माना है। छन्द युक्त गायन की यही परम्परा आज भी चली आ रही है।

पद(बंदिश), पद्य व सार्थक शब्द, छन्द के अभिन्न अंग हैं। साहित्य में छन्द दो प्रकार के माने जाते हैं :–

1. वार्णिक (वृत्त–छन्द) – इसके गण 3–3 अक्षर के होते हैं तथा ये आठ प्रकार के होते हैं।

2. मात्रिक (जाति छन्द) – वे छन्द जो मात्रा गणों की सहायता से लिखे जाते हैं, मात्रिक छन्द कहलाते हैं। ये 4–4 मात्रा के होते हैं तथा इनके पांच प्रकार होते हैं।

छन्द युक्त बन्दिश के लिए आवश्यक है :–

- रागानुसार स्वरों का संयोजन।
- बंदिश किसी ताल के ठेके में बंधी हो।
- शब्द रचना सुन्दर व भावपूर्ण हो।